26 फरवरी 2023, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 41, अंक 8, कुल पृष्ठ 36 ISSN 2454 - 5163

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

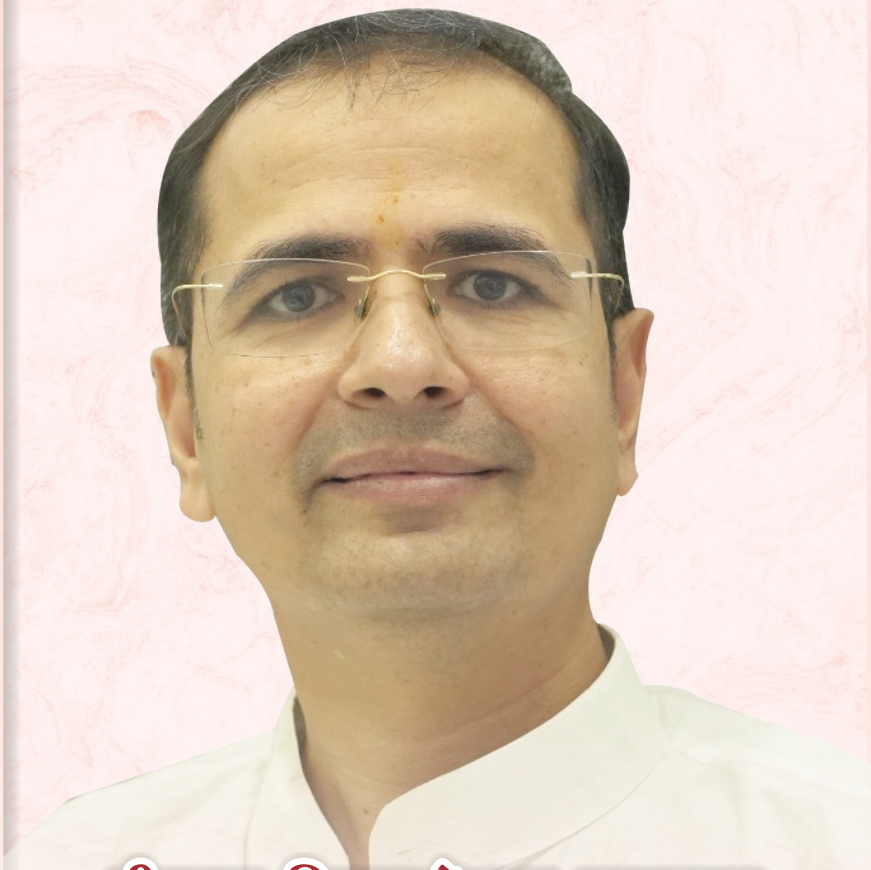

वीतराग-विज्ञान के सह-सम्पादक

अध्यात्मवेत्ता

डॉ. संजीवकुमारजी गोधा

अब नहीं रहे...

वीतराग-विज्ञान (475)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

पं. अरुणकुमार शास्त्री

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

व्हाट्सऐप नं. : 7412078704

E-mail : veetragvigyanjpp@gmail.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7000
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10000**

ज्ञायक का लक्ष्य

मैं पूर्णानन्द का स्वामी ज्ञायकप्रभु हूँ- ऐसे ज्ञायक के लक्ष्य से जो जीव श्रवण करता है, उसे सुनते हुए भी लक्ष्य ज्ञायक का रहता है, उसके चिन्तवन में भी मैं परिपूर्ण ज्ञायकवस्तु हूँ - ऐसा जोर रहता है, उस जीव को सम्यक्त्व सन्मुखता रहती है। मंथन में भी लक्ष्य ज्ञायक का रहता है, यह चैतन्यभाव परिपूर्ण वस्तु है - ऐसा उसके जोर में रहता है, उसे भले ही अभी सम्यक्दर्शन नहीं हुआ हो, जितना कारण देना चाहिए उतना नहीं दे पाया हो; तथापि उस जीव को सम्यक्त्व की सन्मुखता होती है। उस जीव को अंतर से ऐसी लगन लगती है कि मैं तो जगत का साक्षी हूँ, ज्ञायक हूँ। ऐसे दृढ संस्कार अंतर में डालता है कि जो पलट नहीं सकते। जिसप्रकार सम्यग्दर्शन होने पर अप्रतिहतभाव कहा है उसीप्रकार सम्यक्त्व सन्मुखता के ऐसे दृढ संस्कार पड़ते हैं कि अब उसे सम्यग्दर्शन होकर ही रहेगा। जैसे - समयसार गाथा 4 में कहा है कि मिथ्यात्व का एकछत्र शासन चल रहा है, वैसे ही ज्ञायक का एकछत्र लक्ष्य आना चाहिए। उपयोग एकमात्र ज्ञान में स्थिर न रह सके तो द्रव्य-गुण-पर्याय आदि के विचार में बदल दे, उपयोग को सूक्ष्म करते-करते ज्ञायक के बल से आगे बढे वह जीव क्रमशः सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ 35

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 41 (वीर निर्वाण संवत् 2549) **475/अंक : 08**

मेरो मन, ऐसी खेलत होरी...

मेरो मन, ऐसी खेलत होरी।। टेक ।।

मन मिरदंग साज-करि त्यारी, तनको तमूरा बनोरी।
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोउ कर जोरी।।
राग पांचौं पद कोरी।।1।। मेरो मन...।।

समकित रूप नीर भर झारी, करुना केशर घोरी।
ज्ञानमई लेकर पिचकारी, दोउ करमाहिं सम्होरी।।
इन्द्रि पांचौं सखि वोरी।।2।। मेरो मन...।।

चतुर दानको हैं गुलाल सो, भरि भरि मूठि चलोरी।
तप मेवाकी भरी निज झोरी, यशको अबीर उंडोरी।।
रंग जिनधाम मचोरी।।3।। मेरो मन...।।

'दौल' बाल खेलें अस होरी, भव-भव दुःख टलोरी।
शरना ले इक श्रीजिनको री, जगमें लाज हो तोरी।।
मिलै फगुआ शिवगोरी।।4।। मेरो मन...।।

– पण्डितप्रवर दौलतरामजी

क्यों लें महाविद्यालय में प्रवेश ?

1. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का सन् 1977 से 46 वर्षों का गौरवशाली इतिहास है।
2. यहाँ पूर्णत: धार्मिक परिवेश होने से बालक संस्कारशील, धर्मनिष्ठ बनते हैं।
3. यहाँ बालक डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, डॉ. शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्य', पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री आदि अनेक मर्मज्ञ विद्वानों के सान्निध्य में सतत् प्रशिक्षण से जैनतत्त्वज्ञान/दर्शन के विशेषज्ञ विद्वान् बनते हैं।
4. जैनदर्शन के विद्वान् होने से स्व के कल्याण के साथ-साथ अपने परिवार-समाज के कल्याण में निमित्त होते हैं।
5. छात्रावास में रहने से हिताहित का निर्णय करने में छात्र स्वयं समर्थ होते हैं।
6. यहाँ विभिन्न प्रान्तों के छात्रों के साथ रहकर सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता है।
7. महाविद्यालय के छात्र प्रतिवर्ष राजस्थान बोर्ड तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में प्राय: उच्चतम स्थान प्राप्त करते हैं।
8. संस्कृत भाषा में शास्त्री (बी.ए.) की डिग्री राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय की होने से अन्य अपेक्षाकृत आजीविका के अधिक उन्नत अवसर उपलब्ध होते हैं।
9. छात्रों में वक्तृत्वशैली, तर्कशैली एवं अध्ययनशीलता का विशेष विकास होता है, जिस कारण छात्र अन्य सभी क्षेत्रों में भी सफलता प्राप्त करते हैं।

सारांश यह है कि श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश पाकर आपके बालक का सर्वांगीण विकास होता है। वह अपने और अपने परिवार व समाज की उन्नति में निमित्त होता है एवं जैनदर्शन का विद्वान बनकर स्व-पर कल्याण के सम्पादन हेतु अग्रसर होता है।

क्या आप नहीं चाहते कि आपका बालक भी ऐसा हो? यदि हाँ..... तो महाविद्यालय में प्रवेश हेतु बालक को अवश्य प्रेरित करें।

– डॉ. शान्तिकुमार पाटील (प्राचार्य) 8072446379

सम्पादकीय - 1

प्रतिभाशाली विद्वान डॉ. संजीवकुमारजी गोधा

डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जैनदर्शन के प्रभावशाली विद्वान थे। जिन-अध्यात्म पर उनकी गहरी पकड़ थी। आध्यात्मिक पत्रिका वीतराग-विज्ञान के वह सह-संपादक थे। जब से वह वीतराग-विज्ञान के सह-संपादक बने थे, तभी से वे वीतराग-विज्ञान पर गहरी पकड़ रखते थे।

समय के पहले वे गुरुदेवश्री की वाणी का चयन कर उसे व्यवस्थित कर लेते थे। जब वह मेरे पास आता था, तब एक प्रकार से तैयार ही रहता था, पर उसे मैं एक बार आदि से अंत तक अक्षरशः पढ़ अवश्य लेता था, उसमें बहुत कम करेक्शन रहते थे।

आज मैं अपने को उनके बिना असहाय अनुभव कर रहा हूँ।

अभी कुछ दिनों से मेरा प्रवचनार्थ बाहर जाना बहुत कम हो गया था। उस कमी की पूर्ति उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से कर दी थी।

अपने प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने देश-विदेश में धूम मचा रखी थी। पर एकदम अचानक वे अल्पवय में ही हम सबको छोड़ कर चले गये।

अपने स्वर्गवास से एक माह पहले तक वे जिनवाणी के प्रचार प्रसार में अत्यंत सक्रिय थे। लगभग 4 महीने से अपने घर भी नहीं आए थे, जिनको उन्होंने आश्वासन दे रखे थे; वे आज अपने को अनाथ अनुभव कर रहे हैं। उन्होंने अपने सबल कंधों पर वीतराग-विज्ञान और जैन पथप्रदर्शक दोनों पत्र संभाल रखे थे और हमारे

महाविद्यालय में परमभावप्रकाशक नयचक्र और क्रमबद्धपर्याय जैसे जटिल ग्रंथों का अध्यापन संभाल रखा था। हमारी समझ में नहीं आ रहा है कि यह सब काम अब किसके कंधों पर सौंपे।

उनके चले जाने से आज मैं अपने को बहुत अकेला अनुभव कर रहा हूँ। अभी-अभी मैं जिस तत्त्व का प्रतिपादन कर रहा था; उस पर उनकी पूरी पकड़ और श्रद्धा थी। अपने आत्मा के कल्याण में उनने उसका पूरी तरह उपयोग किया।

उन्होंने अपने अन्तिम समय में स्वयं को संभाल लिया और सारे जगत से उपयोग हटाकर आत्मा में लगा लिया था। इसमें उनकी धर्मशील धर्मपत्नी का भरपूर सहयोग था और डॉ. अशीष मेहता का मार्गदर्शन और पूरी सेवा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

उनका पुत्र आर्जव हमारे महाविद्यालय में पढ़ रहा है। प्रतिभाशाली छात्र है। वह निश्चित रूप से उन्हीं जैसा ठोस विद्वान बनेगा और उसकी परिणति भी उनके समान होगी। आज भी उसकी परिणति अत्यन्त निर्मल है।

उनकी समाधि को देखकर सभी मुमुक्षु भाईयों को अपने भव का सुधार कर लेना चाहिये।

उनके परिणामों के अवलोकन से मुझे अत्यन्त स्पष्ट प्रतिभाषित होता है कि उनके संसार समुद्र का किनारा अत्यन्त नजदीक है। लगता है वे दो-तीन भव में ही भव मुक्त होगें।

वे देह छोडकर अत्यन्त उत्कृष्ट संयोगों में गये हैं; उनके अन्त समय के निर्मल परिणामों से उनके वर्तमान संयोगी भावों का अनुमान होता है।

मैं अधिक कुछ नहीं लिखना चाहता; पर आनन्दित बहुत हूँ।●

सम्पादकीय - 2

अधूरी उल्टी आत्मकथा

(गतांक से आगे...)

4

क्या भगवान करुणानिधि हैं?

भगवान की स्तुति करते हुये कुछ मनीषी उन्हें दयानिधि, करुणासागर कहते हैं? मैं अपने बचपन से ही इसके बारे में सोचता रहा हूँ।

मैंने 22-23 वर्ष की उम्र में सन् 1957-58 में देव-शास्त्र-गुरु पूजन लिखी थी। उसकी जयमाला में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि -

करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतरागी हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना न मैंने पहिचाना।।

इसका अत्यन्त स्पष्ट अर्थ यह है कि - हे भगवन्! मैंने आपको **करुणानिधि** समझा, इसलिए भगवान (आपके) भरोसे ही पड़ा रहा; यही सोचता रहा कि आप (भगवान) ही मुझे पूर्ण सुखी कर देंगे। यह सोचकर ही आपके सामने खड़ा रहा।

किन्तु आज समझ में आया है कि आप तो पूर्णत: वीतरागी हैं और स्वयं में लीन हैं। मैंने इस बात को कभी जाना ही नहीं कि तुम

तो इस जगत से एकदम विरक्त हो और कृत-कृत्य हो गये हो किसी का कुछ भी नहीं करते। मैंने इतनी-सी बात की पहिचान नहीं की। यही कारण है कि मैं आपको कर्त्ता-धर्त्ता मानता रहा। इसप्रकार वीतरागी भगवान को किसी का कर्त्ता-धर्त्ता मानना और उनसे किसी भी प्रकार की मांग करना तो अज्ञान है।

यद्यपि मैंने उस समय प्रवचनसार ग्रन्थ नहीं पढ़ा था, पर यह तो जानता था कि भगवान दया के सागर नहीं हैं; दया तो मोहोदय से होने वाला एक विकार है। उन्होंने तो मोह का पूर्णत: अभाव कर दिया है।

सिद्धचक्र विधान में भी कहा गया है -

परदुख में दुख हो जहाँ, मोह प्रकृति के द्वार।
दया कहैं तिसको सुमति, सो तुम दया निवार।।
ॐ ह्रीं अर्हं अत्यन्तनिर्दयाय नमः, अर्घ्यं....।।979।।[1]

जब से ही उक्त पूजन को हजारों लोग प्रतिदिन पढ़ते हैं; पर किसी का भी ध्यान उक्त तथ्य की ओर नहीं जाता, कोई भी उस पर विशेष ध्यान नहीं देता उल्टा भगवान से दया की भीख माँगता रहता है। वे हमें सुखी कर देंगे - ऐसा मानता रहता है।

जबकि पण्डित श्री टोडरमलजी साहब ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि -

''तथा उन अरहन्तों को स्वर्ग-मोक्षदाता, दीनदयाल, अधम-उधारक, पतितपावन मानता है; सो जैसे अन्यमती कर्तृत्वबुद्धि से ईश्वर को मानता है; उसीप्रकार यह अरहन्त को मानता है। ऐसा नहीं जानता कि फल तो अपने परिणामों का लगता है, अरहन्त उनको निमित्तमात्र हैं, इसलिये उपचार द्वारा ये विशेषण सम्भव होते हैं।

1. सिद्धचक्र विधान, आठवीं पूजन - छन्द नं. 979

अपने परिणाम शुद्ध हुए बिना अरहन्त ही स्वर्ग-मोक्षादि के दाता नहीं हैं। तथा अरहन्तादिक के नामादिक से श्वानादिक ने स्वर्ग प्राप्त किया, वहाँ नामादिक का ही अतिशय मानते हैं; परन्तु बिना परिणाम के नाम लेनेवाले को भी स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती, तब सुननेवाले को कैसे होगी? श्वानादिक को नाम सुनने के निमित्त से कोई मन्दकषायरूप भाव हुए, उनका फल स्वर्ग हुआ है; उपचार से नाम ही की मुख्यता की है।

तथाअरहन्तादिक के नाम-पूजनादिक से अनिष्ट सामग्री का नाश तथा इष्ट सामग्री की प्राप्ति मानकर रोगादि मिटाने के व धनादिक की प्राप्ति के अर्थ नाम लेता है व पूजनादि करता है।

सो इष्ट-अनिष्ट का कारण तो पूर्वकर्म का उदय है, अरहन्त तो कर्त्ता हैं नहीं। अरहन्तादिक की भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामों से पूर्व पाप के संक्रमणादि हो जाते हैं, इसलिये उपचार से अनिष्ट के नाश का व इष्ट की प्राप्ति का कारण अरहन्तादिक की भक्ति कही जाती है; परन्तु जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजनसहित भक्ति करता है, उसके तो पाप ही का अभिप्राय हुआ। कांक्षा, विचिकित्सारूप भाव हुए - उनसे पूर्वपाप के संक्रमणादि कैसे होंगे? इसलिये उसका कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

तथा कितने ही जीव भक्ति को मुक्ति का कारण जानकर वहाँ अति अनुरागी होकर प्रवर्तते हैं। वह तो अन्यमती जैसे भक्ति से मुक्ति मानते हैं; वैसा ही इनके भी श्रद्धान हुआ। परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बन्ध है, इसलिये मोक्ष का कारण नहीं है।

जब राग का उदय आता है, तब भक्ति न करे तो पापानुराग

हो ; इसलिये अशुभराग छोड़ने के लिये ज्ञानी भक्ति में प्रवर्तते हैं और मोक्षमार्ग को बाह्य निमित्तमात्र भी जानते हैं; परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानकर सन्तुष्ट नहीं होते, शुद्धोपयोग के उद्यमी रहते हैं।[1]''

वही पंचास्तिकाय व्याख्या में भी कहा है –

''इयं भक्तिः केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोऽपि भवति।।[2]

अर्थ :– यह भक्ति, केवल भक्ति ही है प्रधान, जिसके – ऐसे अज्ञानी जीव के होती है तथा तीव्र राग ज्वर मिटाने के अर्थ या कुस्थान के राग का निषेध करने के अर्थ, कदाचित् ज्ञानी के भी होती है।[2]''

प्रवचनसार में तो करुणा को स्पष्ट रूप से मोह का चिन्ह कहा है। गाथा मूलतः इसप्रकार है–

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसएसु य प्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि।।८५।।

(हरिगीत)

अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति।
और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं।।८५।।

---

1. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ क्रमांक – 222

2. अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधान्यस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति। (पंचास्तिकाय, गाथा 136 की टीका)

पदार्थों का अयथार्थ ग्रहण, तिर्यंच और मनुष्यों के प्रति करुणाभाव तथा विषयों का प्रसंग अर्थात् इष्ट विषयों के प्रति प्रेम और अनिष्ट विषयों से द्वेष ये सब मोह के चिह्न हैं।''

उक्त गाथा का भाव तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र इसप्रकार करते हैं –

''पदार्थों की अयथार्थ प्रतिपत्ति तथा तिर्यंच और मनुष्यों के प्रेक्षायोग्य होने पर भी उनके प्रति करुणाबुद्धि से मोह को, इष्टविषयों की आसक्ति से राग को तथा अनिष्ट विषयों की अप्रीति से द्वेष को – इसप्रकार तीनों चिह्नों से तीनों प्रकार के मोह को पहिचान कर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिए।''

वैसे तो आचार्य जयसेन तात्पर्यवृत्ति में इस गाथा के भाव को आचार्य अमृतचन्द्र की तत्त्वप्रदीपिका के समान ही स्पष्ट करते हैं; **फिर भी वे करुणाभाव शब्द का अर्थ निश्चय से करुणाभाव और व्यवहार से करुणा का अभाव इसप्रकार दो प्रकार से करते हैं।**

जो कुछ भी हो, पर इतना तो सुनिश्चित ही है कि निश्चय से करुणाभाव कहकर उन्होंने भी आचार्य अमृतचन्द्र के अभिप्राय को प्राथमिकता दी है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यहाँ करुणाभाव को मोह का चिह्न बताया गया है। करुणाभाव को यदि चारित्रमोह का चिह्न बताया होता, तब तो कोई बात ही नहीं थी; क्योंकि करुणा शुभभावरूप राग में आती है और पुण्यबंध का कारण है; किन्तु यहाँ तो उसे दर्शनमोह अर्थात् मिथ्यात्व का चिह्न बताया गया है; जो करुणा को धर्म माननेवाले जगत् को एकदम अटपटा लगता है।

आचार्य जयसेन को भी इसप्रकार का विकल्प आया होगा। यही कारण है कि वे नयों का प्रयोग कर संधिविच्छेद के माध्यम से **करुणाभाव** शब्द का करुणाभाव और करुणा का अभाव - ये दो अर्थ करते हैं। उनके लिए यह सब अटपटा भी नहीं लगता, क्योंकि वे सदा ही अपनी बात को नयों के माध्यम से स्पष्ट करते आये हैं।

पुण्य के बंध के कारण शुभभावरूप होने से, वह व्यवहारधर्म है भी; किन्तु उक्त सम्पूर्ण मंथन के उपरान्त यह बात तो स्पष्ट हो ही गयी है कि दूसरों को मारने-बचाने और सुखी-दुखी करने की मिथ्या मान्यतापूर्वक होनेवाला करुणाभाव सचमुच में मोह (मिथ्यात्व) का ही चिह्न है।

जब एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का, कुछ कर ही नहीं सकता तो फिर बचाने और सुखी करने की मान्यतापूर्वक होनेवाला बचाने व सुखी करने के भाव को सम्यक्त्व का चिह्न कैसे माना जा सकता है?

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने तत्त्वप्रदीपिका का आधार लेकर इस बात को इस रूप में स्पष्ट किया है कि परपदार्थ तो प्रेक्षायोग्य हैं, ज्ञेय हैं, जाननेयोग्य हैं; उन्हें अपने में उत्पन्न होनेवाले करुणाभाव के कारण के रूप में देखना अज्ञान नहीं है तो और क्या है? अर्थात् अज्ञान ही है।

वे मेरे में उत्पन्न होनेवाले करुणाभाव के कारण नहीं, अपितु ज्ञेय होने से उनका ज्ञान होने में कारण हैं। उन्हें ज्ञेयरूप में देखना ही समझदारी है।

इसीप्रकार इष्ट-अनिष्ट बुद्धिपूर्वक होनेवाले राग-द्वेष भी मोह (मिथ्यात्व) के ही चिह्न हैं; क्योंकि ज्ञानी के जो राग-द्वेष पाये जाते हैं; वे इष्ट-अनिष्ट बुद्धिपूर्वक नहीं होते।

प्रश्न – व्यवहार से ही सही, पर आचार्य जयसेन ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि करुणा का अभाव मोह का चिह्न है; पर आप....।

उत्तर – अरे भाई! आचार्य जयसेन तो यह कहना चाहते हैं कि वास्तविक (निश्चय) बात तो यही है कि करुणाभाव, दर्शनमोह का चिह्न है; किन्तु यदि कहीं शास्त्रों में ऐसा लिखा मिल जावे कि करुणाभाव का अर्थ करुणा का अभाव होता है तो उसे व्यवहारकथन ही समझना चाहिए; क्योंकि लोक में करुणाभाव को धर्म कहा ही जाता है, माना भी जाता है।

महाकवि तुलसीदासजी तो यहाँ तक लिखते हैं कि –

दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जबतक घट में प्राण।।

एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि दया के अभावरूप जो क्रूरता है; वह तो मोह (मिथ्यात्व) का ही चिह्न है और **वीतरागतारूप करुणा का अभाव ही सम्यक्त्वरूप धर्म का चिह्न है। कर्तृत्वबुद्धिपूर्वक पर जीवों को बचाने या सुखी करने के भावरूप करुणा और मारने या दुखी करने के भावरूप करुणा का अभाव – दोनों ही दर्शनमोह के चिह्न हैं।**

दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि ज्ञानी श्रावक और मुनिराजों के भूमिकानुसार करुणाभाव पाया ही जाता है। जिसप्रकार का करुणाभाव उनके पाया जाता है, वह दर्शनमोह का चिह्न नहीं है; पर वह चारित्रमोह का चिह्न तो है ही।

तात्पर्य यह है कि मिथ्या मान्यता पूर्वक अनंतानुबंधी रागरूप

करुणा और द्वेषरूप क्रूरता (करुणा का अभाव) दोनों दर्शनमोह के चिह्न हैं और मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभावपूर्वक अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों से होनेवाला करुणाभाव; यद्यपि यह बताता है कि उनके चारित्रमोह विद्यमान है; अत: वह चारित्रमोह का चिह्न तो है, पर दर्शनमोह का चिह्न कदापि नहीं।

आचार्य अमृतचन्द्र पंचास्तिकायसंग्रह की समयव्याख्या टीका में ज्ञानी और अज्ञानी के करुणाभाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि किसी तृषादि दुख से पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण उसका प्रतिकार करने की इच्छा से चित्त में आकुलता होना अज्ञानी की अनुकंपा है और ज्ञानी की अनुकंपा तो निचली भूमिका में विहरते हुए जगत में भटकते हुए जीवों को देखकर मन में किंचित् खेद होना है।

देखो, यहाँ स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि अनुकंपा दुखरूप होती है। यह बात आचार्य कुन्दकुन्द की मूल गाथा में भी इसी रूप में विद्यमान है।[1]

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि सन् 1957 से लगातार पूजन में पढ़ते हुए और आचार्य कुन्दकुन्द के मूल प्रवचनसार, उसकी आचार्य अमृतचन्द्र कृत तत्त्वप्रदीपिका टीका, आचार्य जयसेन कृत तात्पर्यवृत्ति टीका, पंचास्तिकाय संग्रह की आचार्य अमृतचन्द्र कृत समयव्याख्या टीका, सिद्धचक्र विधान और मोक्षमार्ग प्रकाशक में स्पष्ट उल्लेख होने पर भी; उक्त पूजन के बार-बार पढ़ने तथा गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों में सुनने पर भी तथा मेरे द्वारा

1. पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा 137 एवं उसकी समयव्याख्या टीका

बार-बार जोर देकर कहने पर भी लोगों का ध्यान नहीं जाता, उनके चित्त को स्वीकृत नहीं होता - यह बहुत बडे आश्चर्य की बात है।

अरे, भाई! ऐसे महान् सत्य स्वयं की काललब्धि आये बिना गले नहीं उतरते। एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का, कर्त्ता-भोक्ता नहीं है, सभी द्रव्यों के अनादि-अनन्त सुनिश्चित परिणमन में भी किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है - ऐसे महान् सत्य भी काललब्धि आये बिना गले नहीं उतरते।

जैनेतर की तो बात ही क्या करें, जैनों के भी गले में यह बात आसानी से नहीं उतरती; अपने को आचार्य कुन्दकुन्द का, आचार्य अमृतचन्द्र का, आचार्य जयसेन का, पण्डित टोडरमलजी का तथा आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी का अनुयायी, कट्टर अनुयायी मानते हुए भी करुणाभाव को दर्शनमोह (मिथ्यात्व) का चिह्न नहीं मानते; हम उनके लिए क्या कहें?

उनके लिए हम अधिक तो क्या कहें? हमें यहीं मानकर सन्तोष करना पड़ता है कि उनका भी अभी संसार समुद्र का किनारा नजदीक नहीं आया होगा। **(क्रमशः)**

आचार्यों का मूल कथन

जिस करुणा को आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्र दर्शन मोह का चिह्न बता रहे हैं, मिथ्यात्व का चिह्न बता रहे हैं; उस करुणा को धर्म मानना मिथ्यात्व है, अज्ञान है।

यदि भव का अभाव करना है, संसार-सागर से पार होना है तो इस महा सत्य को स्वीकार करना चाहिये।

छहढाला प्रवचन

11

सिद्धि प्राप्ति का उपाय

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो,
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो,
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो।।

(सुप्रसिद्ध, आध्यात्मिक विद्वान् पण्डित दौलतरामजी कृत छहढाला की छठीं ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

भगवान् आत्मा अनन्त शान्तिरूपी बर्फ का पुञ्ज अर्थात् हिमालय पर्वत जैसा है, उसमें आनन्द रस की गंगा बहती है। स्वयं अरूपी होने पर भी वह ज्ञानस्वरूपी है। अतीन्द्रिय आनन्द ही उसका शरीर है, उस चैतन्यमूर्ति में राग की मलिनता नहीं है। आत्मा के निर्विकल्प अनुभव में जो अकथ्य आनन्द होता है, उसकी क्या बात कहें? केवली भगवन्तों ने जैसा आनन्दकन्द आत्मा देखा है, छोटे से छोटे धर्मी के अनुभव में भी वैसा ही आत्मा आता है। उन दोनों के आनन्द के वेदन में (तो) अधिकता-हीनता है; परन्तु उन दोनों की श्रद्धा में तो एक-सा आत्मा ही है। **'जो वाणी द्वारा, विकल्प द्वारा या इन्द्रियज्ञान द्वारा वेदा न जाए'** - ऐसा आनन्द स्वानुभूति में साक्षात् वेदा जाता है। निर्विकल्प वस्तु विकल्प में नहीं आती।

जिसप्रकार क्रोधी जीव कषाय की तीव्रता के समय क्रोध की जलन से झनझना जाता है, उसका शरीर काँपने लगता है। उसीप्रकार धर्मात्मा जीव के असंख्य चैतन्य प्रदेश स्वानुभूति के समय शान्ति के वेदन से झनझना

उठते हैं - **यही अतीन्द्रिय महा-आनन्द है।** अत्यन्त गंभीर शान्तरस से भरपूर आत्मा में लीन मुनिराज अपूर्व आनन्द की मौज़ मनाते हैं। ऐसा आनन्द इन्द्रपद में भी नहीं है। चक्रवर्ती व इन्द्र आदि सम्यग्दृष्टि होते हैं; अतः उन्हें सम्यग्दर्शन की अनुभूति में ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है; परन्तु इन्द्रपद या चक्रवर्तीपद के वैभव में वह आनन्द नहीं है; इसलिए वे चैतन्य के आनन्द के समक्ष इन्द्रपद या चक्रवर्तीपद के वैभव को तुच्छ समझते हैं।

कहा भी है -

चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग।
काकबीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग।।

जब सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी ऐसा समझते हैं तो वीतरागी मुनिराजों की क्या बात कहना? उन्हें तो स्वानुभूति के अपार निधान खुल गए हैं और केवलज्ञान प्रकट करने के लिए निर्मल ध्यान की शुक्लधारा उल्लसित हो रही है, उसमें अब कषाय-कलंक या घातिकर्म नहीं टिक सकते, उन्हें क्षणमात्र में ही केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सहित अर्हन्तदशा प्रकट हो जाएगी। जिसे तीन लोक '**णमो अरहंताणं**' कहकर वन्दन करता है, उस अर्हन्तदशा की क्या बात? इन्द्र, चक्रवर्ती और गणधरादि मुनिवर भी जिसे नमन करते हैं; उस परमपद की भावना करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रजी लिखते हैं -

चार कर्म घनघाती का व्यवच्छेद जहाँ
जन्म-मरण का बीज मूल से नष्ट कर
सर्व भाव ज्ञाता-द्रष्टा युत शुद्धता
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

देखो! यह सर्वज्ञपद की पहिचानपूर्वक सच्ची भावना है। यह सर्वज्ञपद आत्मा का स्वभाव है। अपने स्वसंवेदन ज्ञान से आत्मा का अनुभव होता है। आत्मा के सन्मुख होकर ऐसे परमपद की भावना करना चाहिए, उसके बिना दु:खों का अन्त नहीं आ सकता।

यह छहढाला जैन समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है। बहुत से दिगम्बर भाइयों को यह कण्ठस्थ है। पाठशालाओं में पाठ्यपुस्तकरूप में इसे पढ़ाया जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने इस छोटी-सी रचना में **'गागर में सागर'** के समान अनेक शास्त्रों का सार संक्षेप में भर दिया है।

यह जीव संसार-परिभ्रमण करते हुए चारों गतियों में जो दु:ख भोग रहा है, उसके वर्णन से यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया था। फिर उस दु:ख के कारण बताए, उससे बचने के लिए सम्यग्दर्शनादि उपाय बताए तथा अर्हन्त और सिद्ध दशा तक पहुँचाकर यह शास्त्र पूरा किया है। इस जीव ने वीतराग-विज्ञान के बिना कैसे-कैसे दु:ख भोगे और वीतराग-विज्ञान होने पर कैसे अचिन्त्य आनन्द सहित मोक्ष प्राप्त किया, वह सब इसमें बता दिया है। निगोद के दु:खों से लेकर सिद्धपद के सुख तक के सभी भावों का ज्ञान करा दिया है।

1) प्रारम्भ में मिथ्यात्व से होनेवाले चार गतियों के घोर दु:खों का वर्णन करके संसार का स्वरूप बताया है।

2) बीच में (तीसरी-चौथी ढाल में) उन दु:खों से छूटने के उपाय रूप सम्यक्त्वादि का वर्णन करके मोक्षमार्ग का स्वरूप बताया है।

3) अन्त में शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञानी होकर अनन्त सुख प्राप्त करने का उल्लेख करके मोक्ष का वर्णन किया है।

इसप्रकार **संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष** - इन तीनों का स्वरूप कहा है।

1) **मिथ्यात्व के कारण यह जीव बहिरात्मा था।**

2) **सम्यक्त्व प्राप्त करके वह अन्तरात्मा हुआ।**

3) **केवलज्ञान प्राप्त करके वह परमात्मा हो गया।**

इसप्रकार इस ग्रन्थ में **बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा** – इन तीनों अवस्थाओं का स्वरूप बताया है।

1) **मिथ्यात्व के कारण यह जीव, आस्रव और बन्ध में प्रवर्तता था।**

2) **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होने पर संवर-निर्जरारूप हो गया।**

3) **केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया।**

इसप्रकार इस ग्रन्थ में **सात तत्त्वों** का वर्णन किया गया है।

यहाँ ग्यारहवें छन्द में शुद्धोपयोगी मुनि द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन चल रहा है। बारहवें-तेरहवें छन्द में सिद्धपद प्राप्त करने का वर्णन करते हुए कहेंगे 'अहो! जिसने यह कार्य किया वह जीव धन्य है, धन्य है। जिसने मनुष्य भव पाकर मोक्ष की साधना का महान कार्य किया है, वह आत्मा वास्तव में प्रशंसनीय है' – ऐसा समझकर हे जीव! तू भी शीघ्र अपना हित कर ले ... '**झटिति निज हित करो**'.. अरे जीव! राग तो आग है, तू विषय-कषायों की आग में क्यों जल रहा है?

ये विषय तो पर पद हैं, इन्हें छोड़ और स्वपद को संभाल कर सुखी हो जा... **यह अवसर मत चूक** – इसप्रकार अन्त में आत्महित की प्रेरणा देकर शास्त्र पूरा करेंगे।

अहो! मुनियों को अनुभव के आनन्द की लहर में चैतन्यसुख का महासागर उछलता है। इन्द्र या चक्रवर्ती को भी वैसा आनन्द नहीं है, इसकी महिमा की क्या बात? **(क्रमशः)**

नियमसार प्रवचन –

परमसमाधि भाव

परमपूज्य, सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा 104 पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस-गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलत: इसप्रकार हैं –

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं समाहि पडिवज्जए।।104।।

(हरिगीत)

सभी से समभाव मेरा, ना किसी से वैर है।
छोड़ आशाभाव सब, मैं समाधि धारण करूँ।।104।।

अन्वयार्थ : सभी जीवों के प्रति मुझे समताभाव है, मुझे किसी के साथ बैर नहीं है। वस्तुत: मैं आशा को छोड़कर समाधि को प्राप्त करता हूँ।

(गतांक से आगे....)

आचार्यदेव कहते हैं कि हमें किसी के प्रति विषमता का भाव नहीं है। हम तो अपने प्रत्याख्यान में हैं। अर्थात् चिदानन्द ज्ञानस्वरूप के भानसहित आत्मा की रमणता में हैं। हम तो ज्ञेय के ज्ञाता हैं। शरीरादि सभी परपदार्थ ज्ञेय हैं, उनके ऊपर हमारा कोई अधिकार नहीं है; तथा पुण्य-पाप, दया-दान आदि विकारी परिणाम भी ज्ञान के ज्ञेय हैं, हमें उनका स्वामित्व स्वीकार नहीं है। **'यह जीव हमारा मित्र है अथवा हमारा शत्रु है'** – ऐसी राग-द्वेष की भावना का हमारे में अभाव है। इसप्रकार यथार्थतया आत्मस्वरूप समझे बिना बाह्य में व्रत-प्रत्याख्यान (त्याग) नहीं होते।

मित्ररूप या शत्रुरूप परिणति न होने के कारण मुझे किसी प्राणी के साथ बैर नहीं। ज्ञानी आत्मायें अन्तर उपशम, शान्तरस में ढल गई हैं। **'यह ठीक है या अठीक है'** – ऐसे व्यर्थ के विकल्प करना आत्मा के लिये हानिकारक है, इससे आत्मा को कोई लाभ नहीं है। इसतरह ज्ञानियों ने निर्णय करके, आत्मा में विशेष स्थिरता का पुरुषार्थ करके, जो अल्प अस्थिरता की वृत्ति होती थी, उसे भी छेदकर समता प्राप्त की है।

प्रश्न : अन्य सभी के प्रति तो समता हो; परन्तु किसी एक व्यक्ति के प्रति यदि कुछ खटक रह जावे तो?

उत्तर : जिसे एक व्यक्ति के कारण खटका है, उसे सबके साथ खटका है। ज्ञानी को जो कुछ अस्थिरता के कारण द्वेष होता है, वह अपने अपराध से है, सामनेवाले व्यक्ति के कारण से नहीं। **अस्थिरता का अपराध किसी अन्य व्यक्ति के कारण बनता है** – यह मान्यता यथार्थ नहीं है। यदि ऐसा हो तो उसका लक्ष्य छूटकर आत्मा में कभी भी स्थिर नहीं हुआ जा सकता।

त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव के दर्शन हों तो उनके कारण हमें भक्ति का राग नहीं होता और कोई सर फोड़नेवाला वैरी हो तो उसके प्रति हमें द्वेष नहीं आता। हम तो हमारे ज्ञानस्वभाव में, शान्त, उपशमरसस्वरूप समता में हैं – इसे भगवान ने प्रत्याख्यान कहा है।

'देखो! आचार्यदेव डंके की चोट पर कहते हैं कि हे भव्य जीवों! तुम भी हमारे जैसे ही हो' तुम्हारे में भी अन्दर ज्ञानानन्द चैतन्य की समता शक्ति में पड़ी है, उसका तुम निर्णय करो। भगवान कहते हैं कि प्रसंग शोक का कारण नहीं है, शोक का कारण तो अपना अपराध है। पुत्र मर जाय तो उसके कारण शोक हो – ऐसा नहीं है। यदि ऐसा हो तो जिस-जिस को पुत्र वियोग हो, उस-उस को समानरूप में शोक होना चाहिये। संयोग के

प्रमाण में विकार नहीं होता; विकार तो अपने राग-द्वेष के प्रमाण में होता है। ज्ञानी समझते हैं कि वह विकार, हमारे त्रिकालीस्वरूप में नहीं है। निचली भूमिका में अस्थिरता के कारण अल्प-अल्प विकार होता है – अस्थिरता सम्बन्धी किंचित् विषमता होती है; किन्तु यहाँ तो चारित्र की बात है। मुनि अपने स्वरूप में विशेष स्थिर हो गये हैं; अत: वे कहते हैं कि हमें राग-द्वेष की विषमता नहीं है।

अहो! इस आत्मवस्तु में, चैतन्य ज्ञानानन्द पदार्थ में परवस्तु का अत्यन्त अभाव है और परवस्तु में हमारा बिल्कुल अभाव है अर्थात् हमें किसी के प्रति बैर है ही नहीं, आत्मस्वभाव में अशान्ति है ही नहीं – ऐसा निर्णय किये बिना अशान्ति टलती ही नहीं।

आचार्यदेव परम समतारस में झूलते हुए कहते हैं कि सहज वैराग्य परिणति के कारण मुझे किसी भी प्रकार की आशा नहीं वर्तती है। कुन्दकुन्द भगवान आचार्यपद में विराजते हैं - उस दशा में लिखी हुई यह बात है। वे कहते हैं कि 'जगत् के तत्त्व स्वतंत्र हैं, उनका परिणमन उनके आधार से है, मेरे आधार से नहीं; हमारा कोई नहीं और हम किसी के नहीं; इसलिये हमें कोई भी आशा नहीं है।'

आचार्यदेव पुन: कहते हैं कि परम समरसीभाव संयुक्त परम समाधि का मैं आश्रय करता हूँ अर्थात् परम समाधि को प्राप्त करता हूँ। जगत के डाँवाडोल में डुल जाय – ऐसा आत्मा नहीं है। आत्मा तो परम शान्तरस है। चाहे जैसे संयोग हों; तथापि हमें उनके प्रति अनुकूलता-प्रतिकूलता का भाव नहीं आता। हम तो आधि-व्याधि-उपाधि से रहित परम समाधि का आश्रय करते हैं। स्त्री, पुत्र, मकान, लक्ष्मी आदि बाह्य पदार्थों के लक्ष्य से होनेवाले भाव को **उपाधि** कहते हैं, शरीर में रोग होने पर उसकी तरफ लक्ष्य जानेवाले भाव को **व्याधि** कहते हैं तथा अन्दर में पुण्य-पाप के

अनेक प्रकार के होनेवाले विकल्पों को **आधि** कहते हैं। उन आधि-व्याधि-उपाधि के भावों से रहित सच्चिदानन्द आत्मा का भान करके उसमें एकाग्र होकर ठहरने को **समाधि** कहते हैं। इस समाधि का नाम चारित्र है। भगवान् ने त्रिकाली ज्ञानानन्द स्वभाव में चरना-रमना-थमना-जमना ही चारित्र कहा है।

आचार्यदेव कहते हैं कि मैं परम समरसरूपी समाधि का आश्रय लेता हूँ। लौकिकजन प्राणायामादि जड़ की क्रिया को समाधि मानते हैं; परन्तु वह तो जड़ हो जाने का मार्ग है, वह आत्मा की सच्ची समाधि नहीं है, उससे आत्मा की शान्ति रंचमात्र भी प्रगट नहीं होती। **'वास्तव में तो आधि-व्याधि-उपाधि से रहित ज्ञानानन्द, शान्तस्वभावी मैं हूँ'** – ऐसा आत्मा का यथार्थ भान करके उसमें एकाग्रता करना ही परम समाधि है।

इसीप्रकार श्री योगीन्द्रदेव ने अमृताशीति के 17वें श्लोक में कहा है-

(वसंततिलका)

मुक्त्वालसत्वमधिसत्त्वबलोपपन्नः
स्मृत्वा परां च समतां कुलदेवतां त्वम्।
संज्ञानचक्रमिदमंगं गृहाण तूर्ण-
मज्ञानमन्त्रियुतमोहरिपूपमर्दि ।।17।।

(रोला)

हे भाई! तुम महा सबल तज कर प्रमाद अब।
समतारूपी कुलदेवी को याद करो तुम।।
अज्ञ सचिव युत मोह शत्रु का नाशक है जो।
ऐसे सम्यग्ज्ञान चक्र को ग्रहण करो तुम।।17।।

श्लोकार्थ :– हे भाई! स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू आलस्य छोड़कर, उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी का स्मरण करके, अज्ञानमंत्री सहित मोहशत्रु का नाश करनेवाले इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर।

आत्मा का बल बाहर से नहीं लाना पड़ता, वह तो स्वयं ही स्वाभाविक बल का पिण्ड है। जिसप्रकार लेंडी पीपर में वर्तमान तीखापन न देखने में आवे; तथापि चौंसठ प्रहरी तीखेपन की शक्ति वर्तमान में भरी पड़ी है, तीखापन बाहर से लाना नहीं पड़ता। उसीप्रकार आत्मा में भी अनन्त सामर्थ्य भरा पड़ा है, वह बाहर से अथवा पुण्य-पाप के विकारी भाव से प्रकट नहीं होता। हे भाई! ऐसे अनन्त स्वाभाविक बलवाला तू है, इसलिये आलस्य त्याग। अब अवसर आ गया है, अपने स्वभाव के भान सहित रमणतास्वरूप अपनी उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी को याद करके शान्त उपशम भाव का रटन करके अज्ञान मंत्री सहित मोह राजा को नाश करनेवाले इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को ग्रहण कर अर्थात् स्वभाव में एकाग्र होकर अज्ञान मंत्री और मोह राजा का नाश कर।

लोग बाहर में कुलदेवी को मानते हैं, वह सच्ची कुलदेवी नहीं है – ऐसे भ्रम का पोषण करके जीव संसार में भटक-भटक कर मरता है। सच्ची कुलदेवी तो चैतन्य आत्मा की समता है, अन्य कोई कुलदेवी नहीं है। **'चैतन्य त्रिकाली स्वभाव ही आत्मा का सच्चा कुल है और उसकी समता वह कुलदेवी है।'**

हे नाथ! मैं चैतन्यस्वभावी आत्मा हूँ, पुण्य-पाप की कृत्रिम उपाधिरहित मेरा स्वरूप है – ऐसे आत्मा का भान करके उसमें ठहरना, वह हमारे कुल की रीति है – अनन्त तीर्थंकर के कुल की रीति है। 'हम पुण्य-पाप के विकल्प का स्मरण नहीं करेंगे, हृदय में लायेंगे भी नहीं; हम तो अपने त्रिकाली चैतन्य स्वभाव को ही याद करेंगे' **– यही ज्ञानियों के कुल की रीति है।** **(क्रमशः)**

समयसार की 47 शक्तियों पर प्रवचन

त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की 47 शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

(गतांक से आगे....)

यहाँ जो शक्ति का वर्णन है, वह द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से है। जिससे क्रमवर्ती परिणाम में मात्र शुद्धता की ही बात है। उस शुद्धता के क्रम में अशुद्धता की, व्यवहार की नास्ति है - इसी का नाम अनेकान्त है। प्रवचनसार के परिशिष्ट के अन्त में जो नयों का वर्णन है, वह ज्ञानप्रधान कथन है। वहाँ ज्ञानप्रधान शैली होने से राग का कर्ता आत्मा को कहा है।

तो फिर सही बात क्या है?

दोनों बातें अपेक्षा से सही हैं। जहाँ जिस अपेक्षा से बात की है, वहाँ उसी अपेक्षा से यथार्थ समझना चाहिए। शक्ति अर्थात् स्वभाव; और स्वभाववान आत्मा की दृष्टि कराने से वहाँ अशुद्धता की बात है ही नहीं; क्योंकि द्रव्यदृष्टि निर्विकल्प है, उसका विषय भी निर्विकल्प है। **द्रव्य में अशुद्धता उत्पन्न करनेवाली कोई शक्ति ही नहीं है;** तथापि जब तक साधकपना है, तब तक राग उत्पन्न होता है। द्रव्यदृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ है, वह राग को भी जानता है। ज्ञान तो स्वपरप्रकाशक है न? उससे जहाँ ज्ञानप्रधान कथन होता है, वहाँ राग का परिणमन स्वयं में है, उससे **राग का कर्ता स्वयं है - ऐसा पर्याय अपेक्षा कहा जाता है।** ज्ञानप्रधान कथन में राग का भोक्ता भी आत्मा को कहा जाता है। प्रवचनसार में विकार के

अंश को जीव का बताया गया है; क्योंकि एक समय के विकारी अंश(पर्याय) को यदि निकाल दें तो तीनों काल की पर्यायों का समूहरूप द्रव्य ही सिद्ध न हो। यहाँ शक्ति के अधिकार में शुद्ध पर्याय की ही बात ली है। शुद्ध पर्याय भले अल्प हो; परन्तु वह पर्याय परिपूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है, प्रसिद्ध करती है। जो अंश है, वह पूर्ण अंशी को सिद्ध करता है।

आप्तमीमांसा में ऐसा लिखा है कि अशुद्धपर्याय हो अथवा शुद्धपर्याय हो, वह पर्याय सम्पूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है; क्योंकि नय-उपनय के विषय का समूह द्रव्य है। वहाँ अशुद्धनय भी लिया है। रागरूप अशुद्धता, क्रमवर्ती ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होती है। राग है; अत: राग का ज्ञान होता है - ऐसा कहना व्यवहार है। निश्चय से स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय, ज्ञान ही है। **सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति को आत्मदर्शनमयी और आत्मज्ञानमयी कहा है।**

प्रश्न : सर्व को जानता है; अत: सर्वज्ञ है - क्या ऐसा है?

उत्तर : नहीं; ऐसा नहीं है। जो सर्वज्ञ पर्याय है, वह एक समय में स्वयं के त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान कराती है और पर के द्रव्य-गुण-पर्यायका ज्ञान कराती है - ऐसी आत्मज्ञानमयी है। स्वरूप से ही केवलज्ञान एक समय में स्व-परप्रकाशक है। जो पर को प्रकाशित करे, वह सर्वज्ञ नहीं है। आत्मज्ञानरूप से परिणमन करना तो इसका स्वभाव है। पर को जानता है, ऐसा कहना तो असद्भूतव्यवहार है। **लोकालोक को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय आत्मज्ञानमयी है। लोकालोक के होने से आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञ पर्याय है** - ऐसा भी नहीं है।

संवत् 1683 में इस विषय से संबंधित चर्चा हुई; तब एक सेठ कहने लगे कि लोकालोक है; अत: ज्ञान की पर्याय हुई। तब हमने कहा कि नहीं, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय स्वयं से हुई है, उसे लोकालोक की

अपेक्षा नहीं है। सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में यह बात आई है। **'केवलज्ञान, लोकालोक का निमित्त है और लोकालोक, केवलज्ञान का निमित्त है'** – ऐसा वहाँ लिखा है।

निमित्त है – इसका क्या अर्थ है?

कोई अन्य चीज वहाँ उपस्थित है – इतना ही इसका अर्थ है। केवल-ज्ञान और लोकालोक को अपनी सत्ता के लिए परस्पर की अपेक्षा नहीं है।

'वस्थु सहावो धम्मो' जो भगवान् ज्ञायक आत्मा है, वह वस्तु है तथा इसकी शक्तियाँ, उसके स्वभाव हैं – ऐसा जानकर यह धर्म और यह धर्मी – ऐसी भेददृष्टि छोड़कर निज ज्ञायक प्रभु के ऊपर दृष्टि देने से पर्याय में वीतरागतारूपी धर्म प्रगट होता है। सदा ही मोक्ष का ऐसा ही मार्ग है।

वास्तव में चार अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। जो केवलज्ञान की सत्ता को अन्तर्मुख होकर स्वीकार करता है, उसे यह वीतरागता प्रगट होती है। जो केवलज्ञान को तो माने और कहे कि हमें पुरुषार्थ क्या करना? उसने वास्तव में केवलज्ञान की सत्ता को माना ही नहीं, जिसने उसे अन्तर में स्वीकार किया है, वह अन्तर पुरुषार्थ है और केवलज्ञानी ने उसका संसार देखा ही नहीं है।

देखो! यह पुरुषार्थ का स्वरूप! **केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार केवलज्ञान स्वभाव में झुकने से होता है।** आहाहा! पूर्णभरितावस्थ केवलज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा है, वह घट-बढ़ रहित सदा जैसा है, वैसा ही रहता है – ऐसा ही स्वीकार करके उसके आश्रय से परिणमन करना धर्म है। **इसप्रकार यह त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति पूर्ण हुई।** ●

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों का प्रतिदिन
प्रात: 06:30 बजे से अरिहन्त चैनल पर लाभ अवश्य लेवें।

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

(गतांक से आगे....)

प्रश्न : जिसके प्रताप से जन्म-मरण टले और मुक्ति प्राप्त हो - ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन पंचम काल में शीघ्र हो सकता है क्या?

उत्तर : पंचम काल में भी क्षणभर में सम्यग्दर्शन हो सकता है। पंचम काल सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करने के लिए प्रतिकूल नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट करना तो वीरों का काम है, कायरों का नहीं। पंचम काल में नहीं हो सकता, वर्तमान में नहीं हो सकता - ऐसा मानना कायरता है। बाद में करेंगे, कल करेंगे - इसप्रकार वायदा करने वालों का यह काम नहीं है। आज ही करेंगे, अभी करेंगे - ऐसे वीरों का यह काम है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके समक्ष देखने वालों को पंचम काल क्या करेगा?

प्रश्न : शुद्धात्मा की रुचिरूप सम्यग्दर्शन को निश्चय सम्यग्दर्शन कहा गया है। उस निश्चय सम्यग्दर्शन के सराग सम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व ऐसे दो भेद क्यों?

उत्तर : निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ वर्तते हुए राग को बताने के लिए निश्चय सम्यक्त्व को सराग सम्यक्त्व कहा जाता है। वहाँ सम्यग्दर्शन तो निश्चय ही है; परन्तु साथ में प्रवर्तमान शुभ राग का व्यवहार है। अत: उसका सम्बन्ध बताने के लिए सराग सम्यक्त्व कहने में आता है। गृहस्थाश्रम में स्थित तीर्थंकर, भरत, सगर आदि चक्री तथा राम, पाण्डव आदि को तो निश्चय सम्यग्दर्शन था; तथापि उसके साथ वर्तते हुए शुभराग

का सम्बन्ध बताने के लिए उन्हें सराग सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यहाँ मूल प्रयोजन वीतरागता पर वज़न देना है। इसलिए निश्चय सम्यक्त्व होने पर भी उसे सराग सम्यक्त्व कहा गया है और उसे वीतराग सम्यक्त्व का परम्परा साधक कहा है।

शुद्धात्मा की रुचिरूप निश्चय सम्यग्दर्शन में सराग और वीतराग ऐसे भेद नहीं हैं। सम्यग्दर्शन है तो एक-सा है; किन्तु जहाँ स्थिरता की मुख्यता का कथन चलता हो, वहाँ सम्यक्त्व के साथ वर्तते हुए राग के सम्बन्ध को देखकर उसे **सराग सम्यक्त्व** कहा है और राग रहित संयमी के **वीतराग सम्यक्त्व** कहा है, क्योंकि जैसा वीतराग स्वभाव है, वैसा ही वीतरागी परिणमन भी हुआ है; अत: वीतरागता का सम्बन्ध देखकर उसे वीतराग सम्यग्दर्शन कहा गया है।

प्रश्न : ज्ञानप्राप्ति का फल तो राग का अभाव होना है न?

उत्तर : राग का अभाव अर्थात् राग से भिन्न आत्मा के अनुभवपूर्वक भेदज्ञान का होना, इसमें राग के कर्तापन/स्वामीपने का अभाव हुआ, राग में से आत्मबुद्धि छूट गई, यही राग के प्रथम नम्बर का अभाव हो गया।

प्रश्न : सम्यग्दर्शन सहित नरक वास भी भला कहा है तो क्या नरक में सम्यग्दृष्टि को आनन्द की गटागटी है ?

उत्तर : यह तो सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से कहा है, फिर भी जितनी कषाय है, उतना दु:ख तो है ही। तीन कषाय है, उतना दु:ख है। मुनि को घानी में पेले, अग्नि में जलावे, तथापि तीन कषाय का अभाव होने से उन्हें आनन्द है।

प्रश्न : सम्यक् श्रद्धा और अनुभव में क्या अन्तर है?

उत्तर : सम्यक् श्रद्धान-प्रतीति तो श्रद्धागुण की पर्याय है और अनुभव मुख्यत: चारित्र गुण की पर्याय है। **(क्रमश:)**

समाचार दर्शन

पण्डित टोडरमलजी की साधना-स्थली, जयपुर में जन्मे....

अध्यात्मवेत्ता डॉ. संजीवकुमारजी गोधा नहीं रहे

जिनधर्म की प्रभावना में अपना विशेष उल्लेखनीय योगदान देने वाले, जैनदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान्, हजारों साधर्मियों को प्रतिदिन अपने प्रवचनों के माध्यम से धर्मामृत का पान कराने वाले, ओजस्वी वक्तृत्वशैली के धनी, उत्कृष्ट प्रवचनकार, वात्सल्यमूर्ति, सरल परिणामी, मृदुभाषी, अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् अध्यात्मवेत्ता डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर का दिनांक 17 फरवरी 2023 को अकस्मात् शान्त परिणामों से निधन हो गया।

आप **कालचक्र** नामक पुस्तक के लेखक हैं। जैन जगत की विभिन्न 13 पुस्तकों के संपादक, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **जैन पथप्रदर्शक** पत्रिका के सम्पादक व **वीतराग-विज्ञान** पत्रिका के सह-संपादक, अर्हं पाठशाला के निर्देशक एवं श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय में नयचक्र, क्रमबद्धपर्याय आदि विषयों के यशस्वी अध्यापक थे।

पण्डितप्रवर टोडरमल पुरस्कार, युवा विद्वतरत्न, आदर्श जैन युवा राष्ट्रीय सम्मान, अति विशिष्ट सेवा अवार्ड, अध्यात्मचक्रवर्ती, अध्यात्मवेत्ता, उपाध्यायकल्प, आचार्य समन्तभद्र पुरस्कार, युवा जैन रत्न सम्मान, अर्हद्वचन आदि उपाधियों व सम्मानों से अलंकृत थे आपके जैसे व्यक्तित्व का अचानक से चिर-वियोग होना मुमुक्षु समाज के लिए अपूरणीय क्षति है, जिसकी पूर्ति कर पाना तो संभव है ही नहीं; वरन् ऐसी परिस्थिति में सहज होना भी अत्यंत कठिन भी है।

2011 से प्रतिवर्ष लगभग 2 महीने विदेशों में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु जा रहे थे। सन् 2023 तक 17 विदेश यात्राओं में अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, अफ्रीका, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, दुबई आदि अनेक देशों के लगभग 40-50 शहरों में धर्मध्वजा फहराने वाले अंतरराष्ट्रीय विद्वान् डॉ. गोधाजी का वियोग देश में ही नहीं; अपितु विदेशों में भी शोक का विषय है।

तीये की बैठक (शोक सभा)

दिनांक 19 फरवरी 2023 रविवार को प्रातःकाल डॉ. संजीवकुमारजी गोधा की स्मृति में शोक सभा (तीये की बैठक) उनकी कर्म स्थली ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में रखी गई थी, जिसमें श्री महेन्द्रकुमारजी गोधा, आर्जव गोधा, श्री प्रदीपजी चौधरी, श्री अरिहंतजी चौधरी, श्री तिलकजी चौधरी, परिवारजन और डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल सहित स्मारक के सभी कार्यकर्त्तागण स्वयं को उनके परिवार का सदस्य मानते हुए सफेद टोपी पहनकर बैठक में बैठे थे, इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न नगरों से पधारे हुए विद्वान, स्नातक व श्रेष्ठीजन आदि भी उपस्थित थे।

सभा के प्रारम्भ में डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित जिनेन्द्र वन्दना, बारह भावना एवं समाधि का सार का पाठ किया गया, तत्पश्चात् सभी साधर्मीजन जिनेन्द्र भगवान के दर्शन हेतु पंचतीर्थ जिनालय गये। इसी बीच पण्डित पीयूषजी शास्त्री ने देश-विदेश की अनेक संस्थाओं, ट्रस्टों, संगठनों, फैडरेशन, मण्डलों, मंदिरों एवं व्यक्तियों द्वारा प्राप्त शोक संदेशों का समय अभाव के कारण वाचन न करते हुए नाम मात्र उल्लेख किया।

डॉ. संजीवकुमारजी गोधा की स्मृति में उनके परिवारजनों द्वारा देश की विभिन्न संस्थाओं में 5 लाख रूपये की राशि दान स्वरूप दी गई।

श्रद्धांजली सभा

19 फरवरी को ही दोपहर में डॉ. संजीवकुमारजी गोधा की स्मृति में श्रद्धांजलि सभा आयोजित हुई। सभा का संचालन पण्डित बिपिनजी शास्त्री, मुम्बई ने किया।

इस प्रसंग पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री प्रेमचंदजी बजाज कोटा, श्री अजितप्रसादजी दिल्ली, श्री आई. एस. जैनसाहब मुंबई, श्री प्रदीपजी चौधरी किशनगढ़, डॉ. शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री अशोकजी बड़जात्या, श्री विजयजी बड़जात्या, पण्डित रजनीभाई दोषी, पण्डित विरागजी जबलपुर, श्री अजितजी बड़ौदा, पण्डित राजकुमारजी उदयपुर, पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर, डॉ. मनीषजी मेरठ, डॉ. जिनेन्द्रजी शास्त्री उदयपुर, श्री शुद्धात्मजी कलेक्टर ग्वालियर, पण्डित अनिलजी खनियांधाना, पण्डित नितिनजी सूरत, श्री सुनीलजी सागर के अतिरिक्त ऑनलाइन माध्यम से पण्डित अभयकुमारजी देवलाली, श्री अतुलभाई खारा, श्री राजेशभाई जवेरी, श्री निमेशभाई शाह, श्री बसंतभाई दोषी, श्री विपुलभाई मोटाणी, श्री अशोकजी पाटनी, श्री अक्षयभाई दोषी आदि ने संजीवजी के सम्बन्ध में अपने उद्गार व्यक्त कर उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित किये।

भाव व्यक्त करते हुए....

पण्डित रजनीभाई दोषी ने कहा कि गुरुदेवश्री के 9000 प्रवचनों में से कम से कम 1000 प्रवचनों में दादा (डॉ हुकमचन्दजी भारिल्ल) का नाम आता है और 3 वाक्य बोलते हैं। **नानी उमर छे, क्षयोपशम घणों छे, प्रभावना घणीं करे छे** यदि संजीवजी उस समय गुरुदेवश्री के हयाति में होते तो गुरुदेवश्री के प्रवचनों में भी उनके लिए यही तीन वाक्य आते.....।

श्री अशोकजी बाडजात्या ने कहा कि मेरी दृष्टी में विश्व में जैन धर्म को सर्वाधिक प्रचारित करने वाले तीन व्यक्ति हैं - पहले गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दूसरे डॉ.हुकमचंदजी भारिल्ल और तीसरे डॉ. संजीवकुमारजी गोधा।

डॉ. गोधा के वियोग में सारा देश व्याकुल, गॉव-गॉव में श्रद्धांजलि सभायें

अध्यात्मवेत्ता डॉ. संजीवकुमारजी गोधा की स्मृति में सम्पूर्ण भारतवर्ष अपने श्रद्धासुमन आर्पित कर रहा है, जिसमें श्री 1008 दिगम्बर जैन मंदिर दलपतपुर, तीर्थधाम मंगलायतन, श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर विश्वास नगर, श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर उदयपुर, श्री सीमंधर जैन मन्दिर टीकमगढ़, जैन युवक मंडल बेलगांव कर्नाटक, श्री नंदीश्वर जिनालय खनियांधाना, श्री महावीर जिनालय किशनगढ़, महावीर ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल कारंजा, श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल कोटा, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली, शिवाजी मंदिर दादर, जैन पाठशाला समिति व स्वाध्याय मंडल जयपुर, श्री 1008 आदिनाथ जिनालय छिंदवाड़ा, श्री समयसार विद्या निकेतन ग्वालियर, श्री महावीर जिनालय सागर, श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल कोलकाता, श्री आदिनाथ जिनालय कोलारस, संस्कारतीर्थ शाश्वतधाम उदयपुर, श्री भगवान महावीर कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन ट्रस्ट दमोह, मुमुक्षु मंडल नवरंगपुरा, तीर्थधाम ज्ञानोदय भोपाल, श्री दिगंबर जैन महावीर परमागम मंदिर भिंड, श्री दिगंबर जैन मंदिर कोहेफिजा भोपाल, श्री महावीर स्वामी समवशरण मंदिर भोपाल, श्री त्रिभुवन तिलक श्री मंदिर जिनालय ग्वालियर, मुमुक्षु समाज ट्रस्ट चैतन्य धाम, श्री शांतिनाथ दिगंबर जैन मंदिर फिरोजाबाद, श्री दिगंबर जैन मंदिर नोगामा, श्री शांतिनाथ दिगंबर जैन मंदिर हिंगोली, श्री वीतराग विज्ञान भवन नेहरू पुतला इतवारी नागपुर, सकल दिगंबर जैन समाज पिड़ावा, दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल औरंगाबाद इत्यादि स्थानों पर 20 फरवरी तक श्रद्धांजलि सभाओं का आयोजन किया जा चुका है एवं अनेकों जगह किया जा रहा है।

विशेष ध्यान दें...

गतांक में श्री टोडरमल स्मारक स्थित पंचतीर्थ जिनालय के ग्यारहवें वार्षिक उत्सव मनाये जाने से संबंधित सूचना प्रकाशित की गई थी; परन्तु समाज के प्रतिष्ठित विद्वान एवं हमारे परिवार के ही सदस्य डॉ.संजीवकुमारजी गोधा के चिर-वियोग के दु:ख में वार्षिकोत्सव को निरस्त किया गया।

श्रद्धासुमन समर्पित

किशनगढ़ निवासी **श्रीमती पताशी देवीजी चौधरी** का 30 जनवरी 2023 को पंचपरमेष्ठी के स्मरण पूर्वक देह-वियोग हो गया। आप तत्त्वज्ञानी महिला थीं एवं जीवन के अन्तिम क्षण तक तत्त्वज्ञान के जुड़ी रहीं। आपने अपने पूरे परिवार को भी तत्त्वज्ञान के संस्कारों से संस्कारित किया। आप जैनदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान डॉ. संजीवकुमारजी गोधा की दादीसास एवं श्रेष्ठीवर्य श्री प्रदीपजी चौधरी, किशनगढ़ की माताश्री थीं। आपकी स्मृति में 11,000 रुपये की राशि प्राप्त हुई; एतदर्थ धन्यवाद।

कोटा निवासी **श्रीमती मुन्नी देवीजी** का 11 फरवरी 2023 को देव-शास्त्र-गुरु के स्मरण पूर्वक देहावसान हो गया है। आप सरल स्वभावी, सदैव प्रसन्न रहने वाली महिला थीं एवं टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक विद्वान पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री, कोटा की माताश्री थीं।

गोहद निवासी **श्रीमती सोमादेवीजी जैन** धर्मपत्नी ओमप्रकाशजी जैन का 12 फरवरी 2023 को शान्त परिणामों से निधन हो गया। ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक विद्वान पण्डित संदीपजी शास्त्री की माताश्री थीं। आप की स्मृति में जैन पथप्रदर्शक एवं वीतराग विज्ञान हेतु 1100-1100 रूपये की राशि प्राप्त हुई; एतद्र्थ धन्यवाद।

जयपुर निवासी **श्रीमती रतनप्रभाजी जैन** का 14 फरवरी 2023 को परलोक गमन हो गया। आपका के परिवार का पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में सहयोग रहता है। आपकी स्मृति में 31,000 रुपये की राशि प्राप्त हुई; एतदर्थ धन्यवाद।

सांगानेर निवासी **डॉ. प्रियंकरजी जैन** का 17 फरवरी 2023 को आकस्मिक देह विसर्जन हुआ। ज्ञातव्य है कि आप महाराष्ट्र में आरंभिक दौर में तत्त्वप्रचार के प्रमुख आधार स्तंभों में से एक थे। आप की प्रेरणा से कई जिनमंदिरों का निर्माण हुआ।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र अभ्युदय को प्राप्त हों - यही भावना है

महाविद्यालय में वार्षिक साहित्यिक एवं खेलकूद प्रतियोगिताओं का...

पुरस्कार वितरण समारोह सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के सत्र 2022-23 की आचार्य अमृतचंद्र साहित्य एवं आचार्य समंतभद्र खेल महोत्सव का पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 12 फरवरी 2023 को संपन्न हुआ।

तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के मंगल सान्निध्य में कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री सुशीलकुमारजी गोदिका ने की। मंच पर श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, डॉ. शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री अखिलजी इंदौर, श्री अश्वनीजी दिल्ली, श्रीमती कमलाजी भारिल्ल, श्रीमती गुणमालाजी भारिल्ल, श्री अनुभवप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित सर्वज्ञजी भारिल्ल, पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री, पण्डित संयमजी शास्त्री आदि आसीन थे। साहित्यिक व खेलकूद प्रतियोगिताओं में स्थान प्राप्त करने वाले सभी छात्रों को पुरस्कार राशि, प्रमाण पत्र एवं ट्रॉफी प्रदान कर सम्मानित किया गया। **विशेष रूप से.....**

आचार्य समतभद्र
खेलरत्न पुरस्कार
सोहम शाह, सोलापुर

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल
सर्वाधिक विजेता कक्षा पुरस्कार
ज्ञाता (शास्त्री तृतीय वर्ष)

आचार्य अमृतचन्द्र
साहित्यरत्न पुरस्कार
संदेश जैन, दिल्ली

ब्र. यशपाल जैन
उदीयमान खिलाड़ी पुरस्कार
सानिध्य नेजकर, दानोली

पण्डित रतनचंद भारिल्ल
उदीयमान साहित्यकार पुरस्कार
आकिंचन पुजारी खनियांधाना

कार्यक्रम का संचालन पण्डित गौरवजी शास्त्री, पण्डित अमनजी शास्त्री ने किया।

साप्ताहिक विचार गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की गतिविधियों के अन्तर्गत तात्त्विक विचार गोष्ठियों की श्रृंखला में दिनांक 12 फरवरी 2023 को **बारह भावना : एक परिशीलन** विषय पर आधारित गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित अनेकांतजी शास्त्री भारिल्ल, जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ताओं के रूप में उपाध्याय वरिष्ठ से आयुष जैन, उदयपुर एवं उपाध्याय कनिष्ठ से काव्य जैन, खनियांधाना व ओम जैन चुने गए। सत्र का संचालन अरविंद जैन, खडैरी एवं दिव्यांश जैन, सागर न एवं मंगलाचरण यश जैन ने किया।

श्रद्धांजलि सभा में उद्गार व्यक्त करते हुये महानुभाव...

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2021-23*

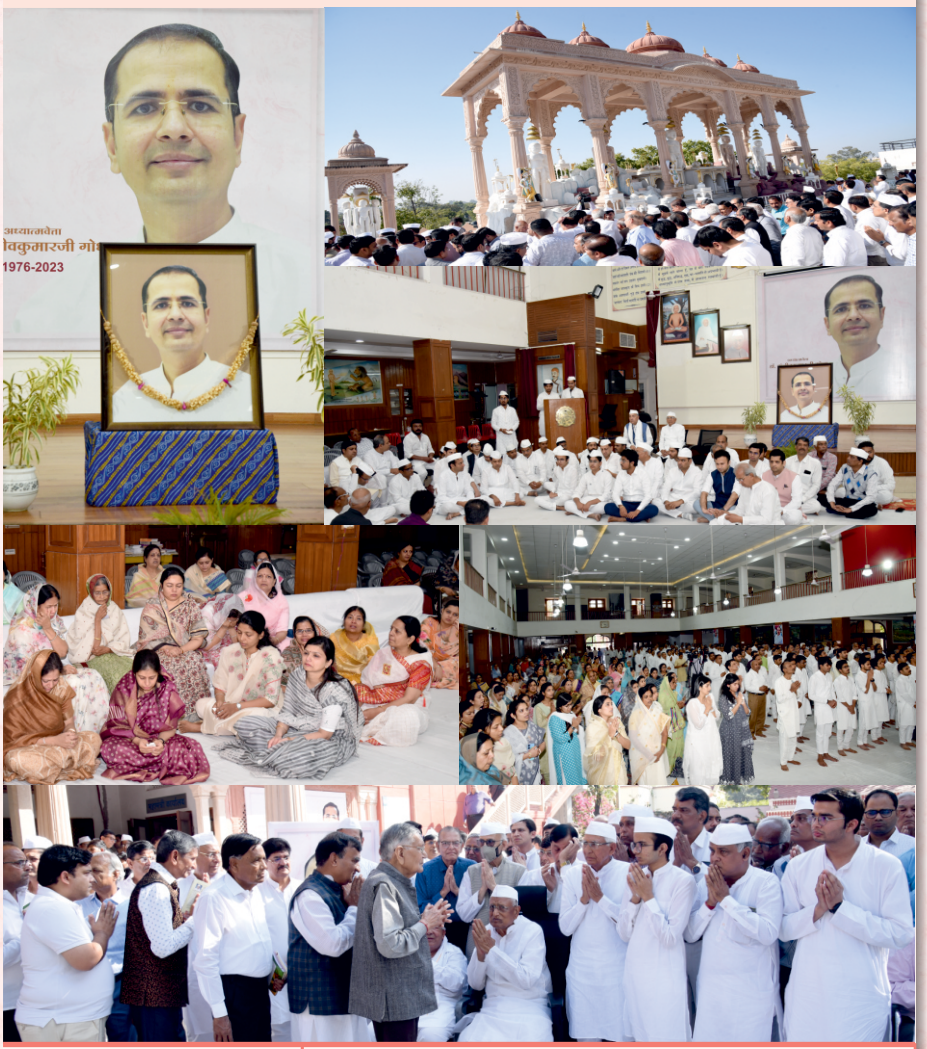

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
पण्डित अरुणकुमार शास्त्री
शास्त्री, व्याकरणाचार्य, एम.ए., एम. फिल
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

प्रकाशन तिथि : 21 फरवरी 2023

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**